International Journal of Research
e-ISSN: 2348-6848 & p-ISSN 2348-795X Vol-5, Special Issue-9
International Seminar on Changing Trends in Historiography: A Global Perspective
Held on 2nd February 2018 organized by The Post Graduate Department of History. Dev Samaj College for Women, Ferozepur City, Punjab, India

ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का एक तुलनात्मक अध्ययन

अमित कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, देव समाज कालेज फॉर वीमेन, फिरोजपुर शहर, पंजाब

नवजोत कौर

छात्रा, *MA*, इतिहास, (द्वितीय वर्ष) देव समाज कालेज फॉर वीमेन, फिरोजपुर शहर, पंजाब

शोध संक्षेप

ऋग्वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में अंतर बड़ा है, जहाँ ऋग्वैदिक काल में उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था वहीँ उत्तरवैदिक काल में उनकी स्थिति में गिरावट दर्ज की गयी है। ऋग्वैदिक काल का जीवन अपेक्षाकृत स्वतंत्र और स्वछंद था। सामाजिक गतिविधियों में उनके किसी भी सहभागिता पर प्रतिबंध नहीं था। वैदिक काल में स्त्री जितनी स्वतंत्र थी , परवर्ती काल में शायद वे किसी भी युग में नहीं थी। उत्तरवैदिक काल की स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया और उनकी दशा में अवनति के तत्व दिखाई देने लगे। उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार तो बने रहे लेकिन उनके वैयक्तिक गुणों के प्रति संदेह व्यक्त किया जाने लगा। पुरुष प्रधान समाज के कारण स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गयी। इस शोधपत्र के मेरा प्रयास है स्त्रियों की स्थिति में क्रमिक ह्रास के कारणों और उनके चरणों की पड़ताल करना।

मुख्य शब्द- ऋग्वेद, उत्तरवैदिक काल, स्त्रियाँ, स्त्री धन।

भूमिका

ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्राप्त था। कन्या, स्त्री और माता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी। उसे पति की अर्धांगिनी और गृहस्वामिनी माना जाता था। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की दशा में काफी गिरावट दर्ज की गयी। पुत्रियों की अपेक्षा पुत्र की कामना की जाती थी। उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कार्य करती थीं, परन्तु उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ जाने से ये कार्य उनके द्वारा किये जाने लगे, समाज में स्त्रियों का महत्व कम हो गया और कन्या जन्म कष्ट का सूचक माना जाने लगा। श्री नेत्र पाण्डेय लिखते हैं "स्त्रियों का जीवन बड़ा कलहपूर्ण हो गया था। अब कन्याओं को दुःख का कारण समझा जाता था और उनके जन्म से लोग दुखी होते थे"।[1]

ऋग्वैदिक काल में स्त्री दशा

ऋग्वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अच्छी थी। सम्मान की दृष्टि से उन्हें देखा जाता था। उनमे कोई भेद भाव नहीं किया जाता था। स्त्री को पति की अर्धांगिनी और गृहस्वामिनी माना जाता था। उच्च शिक्षा पर उनका अधिकार था। ऋग्वैदिक काल में स्त्री अपना पति चुनने को स्वतंत्र थी[2]। बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था। सामाजिक व धार्मिक उत्सवों में वे भाग लेतीं थीं। उत्तर वैदिक काल में उनकी यह स्वतंत्रता धीरे-धीरे क्षीण होने लगी।[3] हालाँकि ऋग्वैदिक काल में जहाँ 'संतान के लिए' प्रार्थना की गयी है

[1] सिंह, वी एन। और जन्मेजय सिंह (2012), *नारीवाद*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पेज 33

[2] नागोरी, डॉ एस एल (1992), *प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पेज 20

[3] सिंह, रहीस (2012), *प्राचीन भारत: प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक*, नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरसले, पेज 144

उसमे पुत्र शामिल तो है लेकिन पुत्री नही। इसके बावजूद भी यह नहीं माना जा सकता कि स्त्रियों को समाज में सम्मान नहीं प्राप्त था बल्कि तत्कालीन साहित्य में ऐसी बहुत सी स्त्रियों की चर्चा है जो तमाम क्रियाकलापों में शामिल थी। उदाहरण के तौर पर उस समय की अनेक स्त्रियों को देखा जा सकता है जो विदुषी थीं, जिन्होंने ऋग्वेद और अन्य वेदों की ऋचाओं की रचना की। लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, शिक्ता, सूर्या, घोषा, रोमशा[4] आदि विदुषियां इसी श्रेणी में आती हैं। ये विदुषियाँ न सिर्फ शिक्षा, ज्ञान और विद्वता में अग्रणी थीं बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी ये भाग लेती थीं। 'ब्रह्म यज्ञ' में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमे सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी के नाम भी शामिल हैं।

आर्य तथा अनार्य कबीलों का एक दूसरे के साथ भोजन और पशुओं को लेकर संघर्ष के माहौल में संभवतः ऋग्वैदिक स्त्रियों में असुरक्षा की स्थिति बनी रही। शिकार से भोजन का जुगाड़ पुरुषों के समान स्त्रियों द्वारा करने के कारण उन्हें पर्दे में रहना सम्भव नहीं था।[5] अनेक स्रोत ऐसा भी उल्लेख करते हैं की जानलेवा समस्याओं से मुकाबला करते रहने के कारण मन में पैदा डर से ध्यान हटाने के लिए और द्रविड संस्कृति से प्रभावित होकर वे मदिरापान करती, उत्सवों में भाग लेतीं, पुरुषों के साथ नृत्य करतीं थीं।[6] ऐसे कई आख्यान हैं जहाँ स्त्री पतियों के साथ युद्ध पर जाती रही है। उदाहरण के तौर पर खेलव ऋषि की पत्नी विश्वलर अपने पति के साथ युद्ध क्षेत्र में गयी और मुदगलानी नामक स्त्री शत्रुओं से लड़कर हजार गायें लाई थी।[7] ऋग्वैदिक काल में पर्दा प्रथा का कोई ज्ञान नहीं मिलता। न ही रामायण व महाभारत में ऐसी किसी प्रथा का ज्ञान मिलता है।[8] समाज में व्यस्क विवाह होते थे, पत्नी का विवाह के पहले भी भावी पति से मिलना सामान्य था। विवाह के बाद वह यज्ञ में भाग लेती थीं, ऋग्वेद में ऐसे संकेत हैं कि विवाह के बाद दुल्हन को बारातियों के सामने लाया जाता था। उनसे आशा की जाती थी कि वह खुल कर समाज में सबसे मुखातिब हुआ करे। अथर्ववेद में प्रेम विवाह का भी वर्णन है।[9] इस समय स्त्रियाँ न्यायालयों में जाकर अपने संपत्ति संबंधी अधिकारों का दावा भी करती थीं। सीता राम के साथ पुरुषों की वेश भूषा में ही वन गयी थीं। कुंती और गांधारी ने कभी पर्दा नहीं किया। इससे सिद्ध है की महाकाव्य काल में भी पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। ऋग्वेद में पत्नी के लिए 'जाय्देस्तम' शब्द आया है जो स्त्री के उच्च स्थान का द्योतक है।[10]

उत्तरवैदिक काल में स्त्री की गिरती हालत हमारा ध्यान आकर्षित करती है। ऋग्वैदिक काल के सन्दर्भ में डॉ बेनी प्रसाद लिखते हैं- "संघटन में सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से स्त्री का कद ऊँचा था। किसी तरह का पर्दा नहीं था। साधारण जीवन के अलावा समाज में मानसिक और धार्मिक नेतृत्व भी स्त्रियों के हाथ में था, वह जीवन स्वेच्छा से जीती थी।धार्मिक प्रवृति की स्त्रियों को अपनी इस प्रवृति के अनुसार चलने में कोई रोक टोक नहीं थी। अनेक ऋषिकाओं की रचनाएं ऋग्वेद में भी शामिल हैं"।[11]

---

[4] लोपामुद्रा अगस्त की पत्नी थी, विश्ववारा ऋग्वेद के पहले मंडल की 126 वें सूक्त की रचनाकार है, अपाला ऋषि अत्रि की पुत्री है, सूर्या को ऋग्वेद में ब्रह्मवादिनी कहा गया है।

[5] सिंह,रहीस (2012), *प्राचीन भारत, प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक* , नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरस्ले। पेज 144

[6] नागोरी, डॉ एस एल (1992), *प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पेज 29

[7] सिंह, रहीस (2012), *प्राचीन भारत: प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक*, नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरसले, पेज 144

[8] सहाय, डॉ शिव स्वरूप (2004), प्राचीन भारत का सामजिक व आर्थिक इतिहास, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पेज-208

[9] वही

[10] जाय्देस्तम का अर्थ है 'पत्नी ही घर है'

[11] सिंह, वी एन। और जन्मेजय सिंह (2012), *नारीवाद*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पेज 34

ऋग्वेद का काल संकुचित विचारों का नहीं था। स्त्रियों के लिए समाज लचीला था।वी एन सिंह के अनुसार *ऋग्वेद में विधवा विवाह के लिए भी कोई निषेध नहीं था।*[12]

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति

उत्तरवैदिक काल की स्त्रियों की स्थिति में अवनति के तत्व दिखाई देने लगते हैं। उनके सामाजिक व आर्थिक अधिकार तो बने रहे लेकिन उनके वैयक्तिक गुणों के सन्दर्भ में संदेह व्यक्त किया जाने लगा। कर्मकांड स्त्रियों की स्थिति को और दयनीय करने लगे।[13] स्त्री व पुरुष के बीच समानता की भावना समाप्त होने लगी। इस युग में स्त्री शिक्षा में गिरावट आती गयी, स्त्री की सामाजिक व आर्थिक स्थिति दयनीय होती गयी। कुछ स्मृतियों में उन्हें 'असत्यभाषी' तक कहा गया है। उसे यज्ञ में भाग लेने और सोम पीने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परिवार में जैसे जैसे पुरुष प्रधानता बढी, स्त्री का दमन शुरू होने लगा। कन्या को दुःख का कारण घोषित किया जाने लगा।[14] धार्मिक अवसरों में उनका भाग लेना तो आवश्यक था लेकिन अब वे सार्वजनिक सभाओं में नहीं जा सकती थी। बाल विवाह शुरू हो गया और स्त्रियों के व्यक्तिगत आचरण व आदर्श में गिरावट आने लगी। विवाह प्रथा भी अभी अपरिपक्व थी। कुंती, माद्री, द्रौपदी के उदाहरण ऐसा ही संकेत करते हैं। [15]

वासुदेव कृष्ण की सोलह हजार पत्नियाँ कही गयी हैं। बहुपत्नीत्व और द्रौपदी के प्रसंग में बहुपतित्व दोनों प्रचलित थे। पति की सेवा न करना पाप के समान समझा जाता था। उत्तरवैदिक काल में पुरुष सत्ता पूरी तरह से प्रभावी हो चुकी थी।[16] उत्तरवैदिक काल में सती प्रथा के आरम्भ होने के प्रमाण भी मिलते हैं।[17] सती होने को बहुत सम्मान दिया जाता था और लगता है की यह प्रथा मात्र कुलीन वर्ग तक ही सीमित थी। दीगर बात यह है कि किसी स्त्री के लिए कोई पुरुष 'सता' नही होता था। यह भी मात्र स्त्रियों तक ही सीमित थी। ब्राह्मण वर्ग में सती प्रथा बहुत बाद में शुरू हुई।

ई।पू। आठवीं सदी में उत्पादन में वृद्धि होने के कारण पुरुषों के अधिकारों में अपार बढ़ोत्तरी हुई। स्त्रियों को आयु के विभिन्न चरणों में पुरुषों के अधीन रखने की बात होने लगी। बाल्यावस्था में वह पिता के अधीन, युवा अवस्था में भाई के, दाम्पत्य जीवन में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन उसका सम्पूर्ण जीवन सिमट कर रह गया। रामायण की सीता को गर्भावस्था में भी राम ने वन में छोड़ दिया। यह घटना स्त्री स्थिति को तत्कालीन समाज में स्पष्ट करने को काफी है। उत्तरवैदिक काल में विवाह संबंधी नियम अत्यधिक कठोर हो गये। सगोत्रीय विवाह को प्रतिबंधित किया गया। अथर्ववेद के अनुसार विधवा विवाह का प्रचलन था।[18] बहुविवाह का एक ज्वलंत उदाहरण यह है की स्वयं मनु की दस पत्नियाँ थीं। कन्याओं के बेंचे जाने का भी उल्लेख मिलता है। दहेज प्रथा भी प्रचलित थी। सम्पत्ति पर चूँकि पुरुष का अधिकार था अतः वही परिवार या समाज का मुखिया था। स्त्री घर की चारदीवारी में बंद हो गयी और उसकी स्वतंत्रता जाती रही।

---

[12] वही

[13] सिंह, रहीस (2012), *प्राचीन भारत: प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक*, नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरसले, पेज 145

[14] सिंह, वी एन। और जन्मेजय सिंह (2012), *नारीवाद*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पेज 44

[15] प्रसाद, ओमप्रकाश और प्रशांत गौरव (2011), *नारीवाद*, जयपुर: रावत प्रकाशन, पेज- 33

[16] सिंह, रहीस (2012), *प्राचीन भारत: प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक*, नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरसले, पेज 145

[17] वास्तव में सती प्रथा के ऐतिहासिक प्रमाण गुप्त काल में मिलने शुरू होते हैं।

[18] सिंह, वी एन। और जन्मेजय सिंह (2012), *नारीवाद*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पेज 35

स्त्रियों के पतन में जाति व्यवस्था ने भी अपना योगदान दिया। जाति के बंधनों ने स्त्रियों की स्थिति में काफी गिरावट लाई। परिवार व कुल की मर्यादा का भार मात्र स्त्री के कमजोर कन्धों पर था। स्त्रियों को मिलना जुलना , आवागमन आदि पर प्रतिबंध लागू हो गया।[19] ऐतरेय ब्राह्मण कहता है –'पुत्री दुखों का कारण है'। अथर्ववेद में स्पष्ट है –' पुत्री को जन्म देने वाली मां की प्रतिष्ठा समाज में गिर जाती थी'। गर्भवती स्त्री को पुत्र उत्पन्न करने के लिए औषधियां खिलाईं जातीं थीं। डॉ आर एस दास के अनुसार 'विवाह का उद्देश्य पुत्री की बजाय पुत्र प्रजनन था।'[20] उत्तरवैदिक काल में महिलाओं के लिए कुछ अशोभनीय शब्दों का भी प्रचलन प्राप्त होता है। उन्हें *श्वान* और *श्यामापक्षी* की संज्ञा दी गयी है।[21] वेदों में अनेक स्थानों पर उत्पादन के साधनों पर स्त्री को पुरुषों के साथ काम करते हुए वर्णित किया गया है लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं था कि उत्पादन पर उसका अधिकार था।[22]

निष्कर्ष

ऋग्वैदिक काल में स्त्री की गरिमा का कोई मुकाबला नहीं था। वह स्वतंत्र थी और समाज में उसपर प्रतिबंध नगण्य थे। बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियाँ अभी नहीं आई थीं, स्त्री स्वच्छंद थी। वह बिना किसी प्रतिबंध के सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकती थी। ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थी और उसका उपनयन संस्कार भी होता था। कुछ स्त्रियों के रणभूमि में जाने के भी उल्लेख हैं। ऋग्वेद में पत्नी का स्थान उंचा दिखाई देता है।

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आती गयी और उसकी दशा बद से बदतर होती गयी। कर्मकांडों ने उसकी स्थिति को और खराब किया। उसे तमाम अधिकारों से वंचित कर दिया गया। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा और बहुविवाह जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन इसी काल में शुरू हुआ। स्त्री की स्थिति भोग और मनोरंजन तक सीमित हो गयी। यह स्थिति समाज में आज तक जारी है।

सन्दर्भ सूची

1. हबीब, इरफ़ान और विजय कुमार ठाकुर (2015), *वैदिक काल,* नयी दिल्ली: डायमंड प्रकाशन
2. नागोरी, डॉ एस एल (1992), *प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस
3. पाण्डेय, राजबली (2015), *अथर्ववेद*, दिल्ली: डायमंड पब्लिकेशन
4. प्रसाद, ओमप्रकाश और प्रशांत गौरव (2011), *नारीवाद*, जयपुर: रावत प्रकाशन
5. सिंह, रहीस (2012), *प्राचीन भारत: प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक*, नयी दिल्ली: डार्लिंग किंडरसले
6. सिंह, वी एन। और जन्मेजय सिंह (2012), *नारीवाद*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स
7. सहाय, डॉ शिवस्वरूप (2004), *प्राचीन भारत का सामजिक व आर्थिक इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस

[19] वही

[20] सहाय, डॉ शिवस्वरूप (2004), *प्राचीन भारत का सामजिक व आर्थिक इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पेज-195

[21] पाण्डेय, राजबली (2015), *अथर्ववेद*, दिल्ली: डायमंड पब्लिकेशन, मंडल 5, 22-67।

[22] हबीब, इरफ़ान और विजय कुमार ठाकुर (2015), *वैदिक काल,* नयी दिल्ली: डायमंड प्रकाशन, पेज 24